गोविंद मिश्र के उपन्यासों में निहित सामाजिक यथार्थ–बोध

अभिलाष,

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार

आधुनिक विश्व साहित्य में उपन्यास सर्वाधिक प्रभावशाली विधा के रूप में स्थापित हुआ है, जो समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के विविध यथार्थ को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। साहित्य का प्रमुख लक्ष्य जीवन के यथार्थ का चित्रण करना है, और इस संदर्भ में उपन्यास ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यथार्थ का अर्थ है जीवन की वास्तविक परिस्थितियों, अनुभवों और भावनाओं को सत्य रूप में अभिव्यक्त करना। सामाजिक यथार्थ–बोध साहित्य में समाज की वास्तविक परिस्थितियों को उजागर करता है। सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थ से आक्रान्त, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ का प्रधान लक्ष्य है। इस दृष्टि से गोविन्द मिश्र के उपन्यास सामाजिक यथार्थ–बोध के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गोविन्द मिश्र आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों में ऐसे रचनाकार हैं जिनके लेखन में सामाजिक सरोकार और यथार्थ का सशक्त समन्वय दिखाई देता है। वे स्वयं कहते हैं – "मेरे लिए साहित्यकार होना, महज लिखना नहीं है, साहित्यकार होकर मैंने अपने लिए एक जीवन–शैली विकसित की है।" उनके उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विसंगतियों का गहरा यथार्थ उभरकर सामने आता है। अपने उपन्यासों में गोविन्द मिश्र ने बदलते सामाजिक मूल्यों, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, नारी स्वतंत्रता, पारिवारिक विघटन और मानवीय संवेदनाओं के विविध आयामों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से आधुनिक समाज की सच्ची तस्वीर खींची है। उनके साहित्य में यथार्थ के साथ मानवीय करुणा और संवेदना का गहरा जुड़ाव दिखाई देता है।

बीज शब्द : *यथार्थ, सामाजिक मूल्य, विसंगतियाँ, मानवीय करुणा, संवेदना, भ्रष्टाचार, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, यथार्थबोध*

आधुनिक विश्व साहित्य की सर्वाधिक प्रभावी विधा उपन्यास है। उपन्यास को आधुनिक युग की देन भी माना जाता है, यह एक ऐसी विधा है जो युग की राजनितिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों से उत्पन्न चुनौतियों को यथार्थ के साथ अभिव्यक्त करने का सफल निर्वाह करती है। यथार्थ अभिव्यक्ति का साहित्य के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है, जिसमें उपन्यास का विशेष योगदान रहा है।

साहित्य के प्रत्येक विधा में जीवन का यथार्थ किसी न किसी रूप में अवश्य उद्घटित होता है, समाज में होने वाली घटनाएँ व परिस्थितियाँ किसी भी रचना या रचनाकार को अवश्य प्रभावित करती हैं। जब साहित्यकार उन घटनाओं को बिना किसी पूर्वग्रह व निष्पक्षता के साथ अपनी रचनाओं में स्थान देता है तो वह यथार्थवादी साहित्यकार कहलाता है।

साहित्य में जीवन का वास्तविक चित्रण, समाज का सच्चा अंकन और उस युग की वास्तविकता को पूरी सच्चाई के साथ उजागर

करना ही यथार्थ–बोध है। हिन्दी शब्दकोश में यथार्थ–बोध का अर्थ है– **"जैसा होना चाहिए ठीक वैसा, वाजिब, उचित, सत्यपूर्वक, यथार्थ होने का भाव, सत्यता, यथार्थ रूप में देखना वास्तविकता पर आधारित यह सिद्धान्त कि किसी चीज को उसके वास्तविक रूप में वर्णित किया जाए।"**[1]

वास्तव में समाज की वास्तविकता को पढ़ना साहित्य में यथार्थ कहलाता है, आज के साहित्य का केन्द्र बिन्दु यथार्थ है। कोई रचनाकार या लेखक जब रचना करता है तो अपने परिवेश, समाज तथा जीवन की विविध घटनाओं तथा अनुभवों से गुजरता है। लेखक अपने इन्हीं अनुभवों को अपनी रचना में ज्यों का त्यों उकेरता है। जब लेखक इस तरह रचना का चित्रण करता है तो उसे यथार्थ कहते हैं। डॉ बैजनाथ सिंहल यथार्थ का अर्थ प्रकट करते हुए कहते हैं कि **"यथार्थ मूलतः घटित, अस्तित्ववान या सिद्ध सत्य का नाम है।"**[2]

साहित्य जीवन का यथार्थ है। समाज की समस्याओं, परम्पराओं, घटनाओं और जीवन के प्रिय और अप्रिय प्रसंगों को साहित्य की उपन्यास विधा में सर्वाधिक यथार्थ अभिव्यक्ति का बोध होता है। यथार्थ के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह अलौकिक, काल्पनिक, सम्भाव्य जीवन स्थितियों, पात्रों और घटनाओं का रंगीन चित्र न होकर सहज–परिचित, वास्तविक घटनाओं का चित्रण है, जो हमारे आस–पास घटित होता है। डॉ शिव कुमार मिश्र के अनुसार **"यथार्थवाद में रचनाकार व्यापक परिवेश के बीच से आवश्यक वस्तु का चुनाव करता है। जीवनानुभवों को तराशता है और उन्हें कलात्मक रूप प्रदान करता है।"**[3]

यथार्थवादी लेखक जैसे बालजाक या टॉलस्टाय अपनी रचना में समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण और नवीनतम समस्यों को चुनते हैं और अपनी रचना का आरम्भ करते हैं। जनसमाज की कठिनाईयों तथा कष्ट, उनके अनुराग और घृणा का स्वरुप निश्चित करते हैं। यह देखने का दृष्टिकोण ही यथार्थवादी रुख की पहचान करता है। वास्तविकता की निष्कपट अभिव्यक्ति यथार्थवाद का लक्ष्य है। यथार्थवाद को **फ्रेंच विद्वान बालजाक** ने इन शब्दों में परिभाषित करते हुए लिखा है कि **"मनुष्य समाज की संतान है अर्थात् सामाजिक परिस्थिति के अनुसार ही मनुष्य स्वभाव अथवा मानवी मन बन जाता है। इसलिए मनुष्य के परिवेश का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है।"**[4]

उपन्यास और यथार्थ का संबंध इतना गहरा है कि उपन्यास की चर्चा करते समय यथार्थ का प्रयोग अनिवार्य सा बन गया है। आदर्शवाद की प्रक्रिया स्वरूप यथार्थ का जन्म हुआ है। **आचार्य हजारी प्रसाद** का कथन है कि कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़ सकता है पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है।

पश्चिम यथार्थवाद को आगे बढ़ाने वाने विद्वानों में, **जॉन स्टुअर्ट मिल, डार्विन, टॉलस्टाय, बालजाक** आदि का नाम लिया जा सकता है। किसी भी समाज की तरह पश्चिम के समाज में भी जीवन संघर्ष के कारण यथार्थ की विचार प्रणाली विकसित हुई। डॉ शिवनारायण श्रीवास्तव ने कहा है कि **"यथार्थवाद अपने सहज में मानव जीवन शक्ति तथा दुर्बलता, महत्ता एवं लघुत, कुरूपता और सुरुपता आदि का सही चित्रण करता है। यथार्थवाद के शाब्दिक अर्थ के अंतर्गत सभी रचनाएँ आएँगी, जिनमें वास्तविक जीवन के उच्च से उच्च एवं निम्न से निम्न पक्षों का यथातथ्य चित्रण हो। वास्तविक जीवन में बाह्य परिस्थितियों एवं क्रिया–कलापों के साथ–साथ आंतरिक भावनाओं, विचारों, आदर्शों, कल्पनाओं एवं स्वप्नों कि भी सत्ता है और उनके द्वारा भी जीवन अभिव्यक्त होता है। अतः व्यापक अर्थ में यथार्थवादी साहित्य मनुष्य कि बाह्य व आंतरिक**

दोनों ही सत्ताओं के सम्मिलित चित्रण को लक्ष्य बनाकर चलता है।"[5]

प्रेमचन्द ने यथार्थवाद के बारे में लिखा है कि **"यथार्थवाद चरित्रों को पाठक के सामने, उनके यथार्थ को नग्न रूप में रख देता है, उसे इससे कुछ मतलब नहीं की सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुच्चरित्रता का परिणाम अच्छा है।"[6]**

यथार्थ के अन्तर्गत यथार्थ–बोथ की व्याख्या करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं **"यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक–पृथक सत्ता का समर्थक है। यह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध यथार्थ–बोध के प्रत्यक्ष वस्तु जगत से है।"[7]**

यथार्थबोध के स्वरूप के बारे में गोविन्द मिश्र ने लिखा है कि **"यथार्थवाद से आज परहेज नहीं किया जा सकता है। अगर साहित्य आज के समाज को उठाता है, तो यथार्थ तो होगा ही लेकिन जीवन को उसी यथार्थ, समकालीन यथार्थ में सीमित करके देखना–यह साहित्य की विराटता को खत्म कर देना है। इसलिए लेखक की नजर इस विराटता पर होनी चाहिए और यथार्थ को उठाते हुए भी उसको लाँघने की कोशिश होनी चाहिए।"[8]**

सामाजिक यथार्थ–बोध में समाज का यथार्थ–चित्रण किया जाता है। इसका शब्दगत अर्थ है कि समाज जैसा है उसका यथावत् चित्रण करना। हमारे समाज में विविध प्रवृतियाँ दृष्टिगत होती है, एक और स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, विपन्नता, दयनीय जीवन स्थितियाँ, सामाजिक आर्थिक विषमता एवं विसंगतियां आदि हैं तो दूसरी ओर सत्य–त्याग, परोपकार, प्रेम, करुणा, स्नेह, सहानुभूति आदि सद्गुण भी विद्यमान है। इन विविध परिस्थितियों को सत्य के साथ साहित्य में अभिव्यक्त करना ही सामाजिक यथार्थ–बोध है। सामाजिक यथार्थ–बोध के बारे में डॉ त्रिभुवन सिहं ने लिखा है – **"समाज की वास्तविक अवस्था में किसी भी वस्तु का तहत चित्र उतार देना श्रेष्ठ साहित्य के लिए हानिकारक होता है। साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र होता है कि जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुन्दर रंग ढले होते हैं। संक्षिप्त रूप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थ से आक्रान्त, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ का प्रधान लक्ष्य है।"[9]**

यथार्थवादी साहित्यकारों के लेखन के बारे में गोविन्द मिश्र ने लिखा है कि **"आज साहित्यकार का सरोकार यथार्थ से ही होगा..... और दूसरा विकल्प नहीं है, लेकिन उस यथार्थ को उठाते हुए वह सौन्दर्य भी नहीं जाना चाहिए, जो जीवन में है। साहित्य अगर जीवन का सामना कराए तो जीवन–शक्ति भी तो दे...सूर, तुलसी, कबीर जो लोग आज भी गुनगुनाते हैं तो इसी वजह से कि उनमें से संबल मिलता है, कोई ऐसी सकारात्मक शक्ति जिसके सहारे हम स्वयं को खड़ा कर सकते हैं।"[10]**

जो नित प्रति हमारे सामने घटित पाप, पुण्य, सुख–दुःख, घात–प्रतिघात आदि घाटित होता है, उसका यथावत चित्रण, सामाजिक यथार्थ–बोध के द्वारा होता है। यथार्थबोध में समाज के किसी भी पक्ष की शक्ति और सीमा को स्वर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक यथार्थ में समाज की यथार्थता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता समाहित होती है।

अरण्य तंत्र उपन्यास में निहित सामाजिक यथार्थ बोध– गोविन्द मिश्र अधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के एक ऐसे साहित्यकार अथवा उपन्यासकार हैं, जिनका लेखन सामाजिक सरोकार से जुड़ा है और अपने सृजन से समाज को बेहतर बनाने की कोशिश में यथार्थ को साथ

में लेकर चलते हैं। किसी भी लेखक कृतित्त्व में उसके व्यक्तित्व की छाप अवश्य दिखाई देती है। मिश्र जी अपनी लेखिकीय व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लिखते हैं – **"मेरे लिए साहित्यकार होना, महज लिखना नहीं है, साहित्यकार होकर मैंने अपने लिए एक जीवन–शैली विकसित की है। कह लीजिए, मेरी जीवन–शैली का दर्शन है साहित्य। साहित्य ने मुझे बहुत दिया है। जो भी मेरे पास अच्छा आया सब साहित्य का दिया था – प्रकृति को महसूसना, संसार को देखने का अंदाज, यात्रा और यात्रा के दरमियाँ नए–नए परिवेशों, लोगों से सटते हुए चलना, हर हाल में चलना, दुःखों के बीच चलते रहने वाली मनुष्य की गरिमा, उस गरिमा को महसूस करने से पैदा हुई हिम्मत, हर व्यक्ति से जुड़ने की कोशिश, सभी तो साहित्य का दिया हुआ है।"**[11]

21वीं सदी के उपन्यास साहित्य में गोविन्द्र मिश्र की एक अलग पहचान है। उनकी रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक प्रशासानिक, आर्थिक वैषम्य का यथार्थ चित्रण दिखाई पड़ता है, इनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में लेखन की अंतर्वस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण मुख्य विषय रहा है।

गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का विविध स्तरों पर चित्रण हुआ है। इन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक यंत्रणा एवं विषमताओं के आगे उन तथ्यों और चरित्रों को उजागर किया है जिनकी वजह से सामाजिक विसंगतियाँ है, ताकि मानवीय यंत्रणा और अधूरेपन का एहसास न हो न क्रांतिकारियों के खोखलेपन का। सामाजिक समस्याओं व उससे उपजे दबाव और तनाव को उनके उपन्यासों में यथार्थ रूप में देखा जा सकता है। वही उनकी चिंतनशीलता का मूलाधार है।

मिश्र जी अपने प्रत्येक उपन्यास में एक नए परिवेश, नयी प्रकति तथा नये स्वभाव के पात्रों को प्रस्तुत किया है। किसी भी उपन्यास में विषयगत दोहराव न होना इनके औपन्यासिक संसार का वैशिष्ट्य है, मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में नये जीवनानुभवों को अभिव्यक्त किया है। सामाजिक, राजनीतिक परिवेश को माध्यम बनाकर यथार्थ के विविध आयामों का विश्लेषण किया है। मिश्र जी के उपन्यास कला के सन्दर्भ में राजकुमार गौतम ने लिखा **"अपनी स्मृतियों, बचपन के अनुभवों से उनकी बुनियाद निर्मित है, जहाँ विघटन और युग बोध, उनकी कथा, पीढ़ी, वर्ग चेतना का इस्तेमाल राजनीतिक कला के जरिये नहीं, बल्कि फूल की तरह अभिव्यक्त करना लेखक जानता है।"**[12]

सामाजिक यथार्च के वैविध्यपूर्ण अंकन की दृष्टि से सक्रिय उपन्यासकार गोविन्द मिश्र ने कई उपन्यासों की रचना की है जिनमें 'वह अपना चेहरा' (1970), 'उतरती हुई धूप' (1971), 'लाल पीली जमीन' (1976), 'हुजूर दरबार' (1981) 'तुम्हारी रोशनी मैं' (1985), 'धीर समीरे' (1988), 'पाँच आँगनों वाला घर' (1995), 'फूल इमारतें और बन्दर' (2000), 'कोहरे में कैद रंग' (2004), 'धूल पौधों पर' (2008), 'अरण्य तंत्र' (2013) प्रकाशित है।

'वह अपना चेहरा' उपन्यास वैयक्तिक यथार्थ पर रचा गया लघु उपन्यास है। इसमें देश की आजाद के बाद नौकरशाही परिवेश के बीच जिस मूल्यहीनता ने जन्म लिया उसका बहुत बढ़िया ढंग से चित्रण किया है। उच्च आकांक्षाओं को प्राप्त करने वाले अफसरशाही की नैतिक पतन की ओर उन्मुख लोगों के विचारों की मानसिकता को यथार्थ रंग से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। गोविन्द मिश्र के इस उपन्यास में सरकारी कार्यालयों के वातावरण और वहाँ हो रहे है अफसरों और कर्मचारियों के कामों और उनकी मानसिकता, स्वार्थ संबंधों को चित्रित किया है। **"सरकारी दफ्तरों में भी बड़े–बड़े आर्थिक तथा वर्गगत स्वार्थों की टकराहट और राजनीतिक, सामाजिक अंतर्विरोध से उत्पन्न कश्मकश चलती**

रहती है, जो व्यक्तियों के आचरण को बहुत दूर तक निर्धारित और नियमित करती है।"[13]

'उतरती हुई धूप' उपन्यास में **"दो किशोर प्रेमियों की रुमानी प्रेम–कथा है। इसके दो भाग हैं – पहले भाग में प्रेमी यथार्थ की जमीन पर स्थित है किन्तु प्रेमिका शुद्ध रुमानी आदर्शवाद के आकाश में संचरण करती है। दूसरे भाग में प्रेमिका यथार्थ की जमीन पर आ गयी है और प्रेमी भावातिरेक में असहज हो गया है। फलतः दो प्रेमियों का सपना यथार्थ से टकराकर चूर–चूर हो जाता है।"[14]**

'लाल पीली जमीन' उपन्यास में बुन्देलखण्ड के युवा छात्रों की भटकाव, गुंडागर्दी, अनुशासन हीनता से भटकी हुई जिन्दगी के यथार्थ को व्यक्त किया गया है तो वहीं **'हुजूर दरबार'** उपन्यास में बीसवीं शताब्दी के आरंभ से स्वतंत्रता के बाद के भारतीय जीवन को, उसके अन्तर्विरोधों के साथ चित्रित किया है। इसमें एक ऐसे राजघराने की कथा है जो ब्रिटिश सम्राज्य की छाया में सुरक्षित है और यह जानता है कि उसका अस्तित्व मिटने वाला है।

'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यास में स्त्री–पुरुष के संबंधों का विश्लेषण करते हुए, भारतीय समाज में नारी मुक्ति के सवाल को गंभीरता पूर्वक **'रमेश और सुवर्णा'** के माध्यम से उठाया गया है। मधुरेश के शब्दों में **"तुम्हारी रोशनी इस तथ्य को साग्रह रेखांकित करता है कि नारी मुक्ति की सार्थकता हार्दिक, पारंपरिक और आत्मीय प्रेम में है, आधुनिकता की छद्म और उच्छृंखलता में नहीं।"[15]**

'पाँच आँगनों वाला घर' उपन्यास में मिश्र जी ने आधुनिकता के दबाव से निस्तर भारतीय संयुक्त परिवार के टूटने और संवेदनशीलता के ह्रास का एहसास बहुत ही यथार्थ रूप में कराया है। तो वहीं अपने उपन्यास **'फूल इमारतें और बंदर'** में प्रशासनिक सेवा के भीतर तीलस्म को उजागर किया है। सचिवालय, जो ऊपर से बहुत साफ–सुथरा और व्यवस्थित दिखता है वह भीतर से कितना भ्रष्ट और घिनौना है इस कटु यथार्थ को मिश्र जी एक पात्र के माध्यम से व्यक्त करते हैं। वह अपनी डायरी में लिखता है– **"अलबत्ता मैं जरूर बेवकूफ बना रहा आधी जिन्दगी – जहाँ कुछ नहीं था, वहाँ फँसा रहा। कभी वक्त के पहले निकलने की हिम्मत न जुटा पाया, आखिरी पड़ाव तक चलता रहा। थोड़ा अच्छा हुआ, वह यही कि तब जब मैं इस तथाकथित महत्त्व के दौर से गुजर रहा था, तब भी मैं इसकी निस्सारता न सिर्फ समझता था, महसूस का लेता था।"[16]**

निष्कर्ष

गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में यथार्थ और समाज का जीवंत संगम दिखाई देता है। वे केवल समाज की विसंगतियों को नहीं दिखाते, बल्कि उनमें निहित संवेदना, संघर्ष और मानवीय मूल्यों को भी अभिव्यक्त करते हैं। उनका लेखन यह सिद्ध करता है कि उपन्यास केवल कल्पना का माध्यम नहीं, बल्कि समाज का आईना है, जिसमें जीवन का सत्य झलकता है। उन्होंने यथार्थ को केवल बाहरी घटनाओं तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे आंतरिक भावनाओं, विचारों और मानवीय संबंधों की गहराई तक पहुँचाया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गोविन्द मिश्र का उपन्यास–साहित्य न केवल सामाजिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज है, बल्कि आधुनिक हिन्दी उपन्यास परंपरा में यथार्थवादी दृष्टिकोण को गहराई देने वाला भी है। उन्होंने सिद्ध किया है कि "साहित्य अगर जीवन का सामना कराए तो जीवन–शक्ति भी तो दे।" अतः उनके उपन्यास यथार्थ–बोध, सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदनाओं के अद्भुत समन्वय के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते हैं। निश्चय ही अपने समय की सारी विसंगतियों और नैतिक एवं सामाजिक खतरों को व्यक्त करने वाले

मानवीय संवेदनाओं के नये भाव स्तरों को कथानक बनाने वाले एक सफल उपन्यासकार के रूप में गोविन्द मिश्र का नाम लिया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हरदेव बिहारी, राजपाल हिंदी शब्द कोश, राजपाल एंड संज, पृ.–679
2. बैजनाथ सिंहल, शोध स्वरुप एवं मानक कार्यविधि, वाणी प्रकाशन, पृ.– 90
3. शिव कुमार मिश्र, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, पृ–20
4. राजेन्द्र सिंह चौहान, मालती जोशी का कथात्मक साहित्य, पृ.–43
5. वही, पृ. 45
6. वही, पृ. 44
7. वही, पृ. 43
8. गोविन्द मिश्र, बंजर जमीन नहीं हूँ मैं (साक्षात्कारकर्ता उर्मिला जोशी) मेंरे साक्षात्कार, पृ. 29
9. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, पृ. 231
10. गोविंद मिश्र, 'कबीर के बहाने'(साक्षात्कार : माताचरण), मेरे साक्षात्कार, पृ. 125–126
11. गोविन्द मिश्र, साहित्यकार होना, सस्ता साहित्य प्रकशन मण्डल, पृ. 165–166
12. राजकुमार गौतम, गोविन्द मिश्र की औपन्यासिक यात्रा, गोविंद मिश्र : सृजन के आयाम, सं. डॉ. चंद्रकांत बांदिवेडकर, वाणी प्रकाशन, पृ. 52–53
13. नेमिचन्द्र जैन, छोटी दुनिया और भाषा की तीखी तराश, गोविन्द मिश्र : सृजन के आयाम, सं. डॉ. चंद्रकांत बांदिवेडकर, वाणी प्रकाशन, पृ. 69–70
14. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ. 241
15. मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास, पृ. 218
16. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ. 242